२८ वें पृष्ठ पर है। पहले कारणज्ञान और कार्यज्ञान की व्याख्या हुई। कारणज्ञान उसे कहते हैं कि जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, ज्ञानस्वभाव (है, वह) और उसमें से कार्य- केवलज्ञान आदि को कार्यज्ञान कहते हैं। समझ में आया? यह पहले आ गया। २८वें पृष्ठ में पहला पैराग्राफ हो गया। दूसरा पैराग्राफ है। २८वें पृष्ठ में, ऊपर दो भाग आ गये। एक कारणस्वभावज्ञान और कार्यस्वभावज्ञान। कारणस्वभावज्ञान का स्पष्टीकरण यहाँ करेंगे। जिसे धर्म करना है, उसे तो त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव जो ज्ञानभाव है, उसका आश्रय करने से उसे धर्म होता है। पश्चात् दूसरे भेद हैं, वे जाननेयोग्य हैं।

मुमुक्षु : उनसे लाभ न हो तो भी जानना।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने की अस्ति जितने प्रकार हैं, उस व्यवहार का ज्ञान तो करना न ? ज्ञान करने के लिये सब व्यवहार भेद हैं। भेद हैं न ? नहीं ? आश्रय करनेयोग्य तो एक ही त्रिकाल उपादेय आत्मा। ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. ध्रुवस्वभाव। कारणभाव त्रिकाल। धर्मी को वही आश्रय करनेयोग्य और उपादेय है। क्या है ?

मुमुक्षु : व्यवहार ज्ञान करनेयोग्य है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान करने का भेद है, ज्ञान न करे ?

मुमुक्षु : ज्ञान करने का अर्थ क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जानना। अर्थ क्या, है ऐसा जानना।

मुमुक्षु : जानने जाना क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जानना। व्यवहार जैसा है, वैसा जानना। स्वभाव का आश्रय करके, अपने ज्ञान का भान हुआ, (वह व्यवहार है), ऐसा जानकर लक्ष्य छोड़ना। परन्तु जाने बिना किसका लक्ष्य छोड़े ? समझ में आया ?

कहते हैं कि मतिज्ञान के इतने भेद। मतिज्ञान, जो पहले सम्यग्ज्ञान होता है। पहला मतिज्ञान। उसके इतने भेद : उपलब्धि, भावना और उपयोग – तीन (भेद)। और पश्चात् अवग्रह आदि से चार अथवा बहु, बहुविध आदि से बारह, ये सब भेदवाली ज्ञान की पर्याय है, ऐसा उसे जानना चाहिए। अब ?

लब्धि और भावना के भेद से श्रुतज्ञान दो प्रकार का है। कहो समझ में आया ? नीचे थोड़ा स्पष्टीकरण किया है, देखो ! उपलब्धि है न ? नीचे। ***२. मतिज्ञान तीन प्रकार का है,...*** आत्मा ज्ञायक ज्ञानस्वभाव है, ऐसा अन्तर में लक्ष्य करके जो मतिज्ञान, ज्ञान, यह तो पहला स्पष्टीकरण आ गया है कि चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोग; अतः मतिज्ञान जो है, वह चैतन्य गुण जो है, उसे अनुसरकर हुई मतिज्ञान की पर्याय है। आहा..हा.. ! कहो, समझ में आया ? यह देहादिक तो पर है, जड़ है। उनकी यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो उनके ज्ञानस्वभाव का एकपना और अनेकपना की व्याख्या है। समझ में आया ? उसमें पुण्य-पाप के भाव होते हैं, उनका भी अभी कोई काम नहीं है। यहाँ तो ज्ञान के प्रकार की बात है।

कहते हैं कि जो तीन—उपलब्धि भावना, उपयोग। नीचे नोट में। ***मतिज्ञानावरण***

क्षयोपशम जिसमें निमित्त है - ऐसी अर्थग्रहणशक्ति (पदार्थ को जानने की शक्ति),... अर्थ ग्रहण अर्थात् जानना। पदार्थ को जानने की शक्ति, ***सो उपलब्धि है;....*** यह उपलब्धि, मतिज्ञान का एक परिणाम है और वे मतिज्ञान के परिणाम, त्रिकाल ज्ञायकभाव अथवा ज्ञानभाव को-चैतन्य को अनुसरकर होते हैं। समझ में आया? ***सो उपलब्धि है;....***

जाने हुए पदार्थ के प्रति पुनः पुनः चिन्तन, सो भावना है;... जानी हुई बात हो, उसे बारम्बार विचारना, घुमाना, वह भावना है। पश्चात् उपयोग ***'यह काला है' 'यह पीला है' इत्यादि...*** भेद पाड़कर। ***इत्यादिरूप अर्थग्रहणव्यापार...*** पहले अर्थग्रहण शक्ति थी। उपलब्धि में पदार्थ को जानने की शक्ति थी और यह उसका व्यापार है। देखो! इन सर्वज्ञ के मार्ग में ही ऐसा होता है। ऐसा अस्तित्व, उसे बराबर निर्णय करना, ऐसा कहते हैं।

वस्तु आत्मा में ज्ञानगुण तो एकरूप है। उसके फिर जब पर्याय में प्रकार पड़े, तब पाँच (प्रकार पड़ते हैं)—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल। केवल (ज्ञान) वह तो पूर्ण ज्ञान में डाला। अब ये चार ज्ञान हैं, वे विभावज्ञान हैं। उनमें भी वापस मतिज्ञान के इतने प्रकार हैं। समझ में आया? ***सो उपयोग है। (पदार्थ को जानने का व्यापार), सो उपयोग है।*** यह उपलब्धि, भावना और उपयोग तीन आ गये।

अब अवग्रहादि भेद— ***३. मतिज्ञान चार भेदवाला है :....*** मतिज्ञान में पहला अवग्रह होता है। अव-निश्चय कुछ थोड़ा ज्ञात हो। पश्चात् उसकी ***ईहा (विचारणा), अवाय (निर्णय) और धारणा।*** ये चार प्रकार मतिज्ञान के भेद हैं। ये भी चार चैतन्य-अनुविधायी परिणाम हैं। निमित्त का लक्ष्य हुआ, इसलिए निमित्त तो ऐसा है, ऐसे नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान जानने में आये, वीतराग वाणी अवग्रह में (आयी) ...समझ में आया? परन्तु उस अवग्रह की पर्याय चैतन्य को अनुसरकर हुई है, भगवान को देखकर नहीं हुई। समझ में आया? सूक्ष्म मार्ग है, भाई! वीतराग सर्वज्ञ का मार्ग लोगों ने बाहर में स्थूल कर डाला है। स्थूल का अर्थ विपरीत कर डाला है। यह तो मार्ग ही सूक्ष्म है।

परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ऐसा फरमाते हैं कि भाई! तेरा आत्मा ज्ञानस्वभावी वस्तु है। वह ज्ञान है, वह त्रिकाल है और त्रिकाल ज्ञान का आश्रय करके जो यह कुछ मति, श्रुत, अवधि आदि प्रगट हों, वे सब भेद, ज्ञान की पर्याय के हैं, ऐसा इसे जानना चाहिए। वे भेद पर के कारण पड़ते हैं, ऐसा नहीं है। वे ज्ञान के भेद के प्रकार भी चैतन्य को अनुसरकर ही हुए वे भाव हैं। समझ में आया?

चार भेद *अवग्रह, ईहा (विचारणा), अवाय (निर्णय) और धारणा। (विशेष के लिए ''मोक्षशास्त्र (सटीक)'' देखें।)* फिर चौथा भेद है न? बहु। *मतिज्ञान बारह भेदवाला है : बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, अनि:सृत, नि:सृत, अनुक्त, उक्त, ध्रुव तथा अध्रुव।* हैं तो यह सब पर्याय के भेद, हों! ध्रुव और अध्रुव सब। *(विशेष के लिए ''मोक्षशास्त्र (सटीक)'' देखें।)* ये मति के भेद कहे। समझ में आया?

लब्धि और भावना के भेद से श्रुतज्ञान दो प्रकार का है। अब श्रुतज्ञान के दो प्रकार। भावश्रुतज्ञान, हों! आत्मा में होता भावश्रुत। वह होता है चैतन्य को अनुसरकर, परन्तु उसके अनुसरने के थोड़े भेद पड़ते हैं, थोड़ा अनुसरण, विशेष अनुसरण, ऐसे ज्ञान की पर्याय के भेद पड़ें, उन्हें इसे जानना चाहिए। आदरनेयोग्य नहीं है परन्तु जाननेयोग्य हैं, ऐसा कहते हैं। (श्रुतज्ञान) दो प्रकार का है—लब्धि और भावना। उघाड़ और व्यापार।

देश, सर्व और परम के भेद से अवधिज्ञान तीन प्रकार का है। अवधिज्ञान। **(अर्थात्, देशावधि, सर्वावधि तथा परमावधि — ऐसे तीन भेदों के कारण)** यह भी जानना चाहिए। **ऋजुमति और विपुलमति के भेद के कारण मन:पर्ययज्ञान दो प्रकार का है।** मन:पर्यय। मुनि का आत्मज्ञानसहित की चारित्र की दशा हो, उन्हें मन:पर्ययज्ञान प्रगट होता है जो कि सामनेवाले के मन को जाने, ऐसी ज्ञान की पर्याय (है) परन्तु वह ज्ञान की पर्याय है तो चैतन्य को अनुसरकर हुई। समझ में आया? ऐसे ऋजुमति और विपुलमति। ऋजुमति की शक्ति थोड़ी है, विपुल की विशेष है।

परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि को... अब देखो। **परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि को ये चार सम्यग्ज्ञान होते हैं।** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा, परमभाव, स्वभावभाव, ध्रुवभाव, आत्मा का नित्य भाव, नित्य-शाश्वत् में स्थित। धर्मी उसमें स्थित दृष्टि है। समझ में आया? **परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि को ये चार सम्यग्ज्ञान होते हैं।** ये चार—मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय। मति के भेद, श्रुत के भेद, अवधि के भेद और मन:पर्यय के भेद। क्या कहा, समझ में आया?

धर्मी जीव सम्यग्दृष्टि (जीव) उसे कहते हैं कि जो परमभाव त्रिकाली ज्ञायक चैतन्यभाव में उसकी दृष्टि है, उसमें उसका ध्येय है और उसमें उसकी एकाग्रता है। समझ में आया? भगवान आत्मा का ज्ञानगुण एकरूप सदृश ध्रुव में जिसकी दृष्टि है, उसे

सम्यग्दृष्टि कहते हैं। दूसरे सब भेद हैं, उन्हें भले जाने, परन्तु दृष्टि ज्ञानभाव त्रिकाल ध्रुव में है। ऐसी सब सूक्ष्म बातें हैं।

मुमुक्षु : जयपुर में.....

पूज्य गुरुदेवश्री : ये तो मीठे व्यक्ति हैं तो.... यह तो सब सुनेंगे। अमुक होगा, ऐसा बोलते हैं। देखो! सार देखो, सार।

परमभाव भगवान आत्मा...! शरीर, वाणी, मन तो जड़ है। पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वह तो विकार है। एक समय की पर्याय अंश तो व्यवहार है। त्रिकाली ज्ञायकभाव में चैतन्य भाव जो है, उसमें जिसकी दृष्टि स्थिर हुई है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं, उसे यह चार ज्ञान उत्पन्न होते हैं। समझ में आया? वस्तु को जानने की लब्धिरूप शक्ति, वह भी परमभाव में स्थित को वह पर्याय प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं। बहुत वांचन करे, बाहर में यह करे, उसे यह ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है —ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! समझ में आया?

भगवान आत्मा परमस्वभाव, ज्ञानभाव में स्थित है। व्याख्या ही ऐसी की है। परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि की व्याख्या की है। आहा..हा..! धर्मी पहले छोटे दर्जे का, सम्यग्दृष्टि, धर्म की शुरुआत की पहली दशा, उस सम्यग्दृष्टि की दृष्टि परमभाव में पड़ी है। परमभाव में दृष्टि (पड़ी है)। कहो, पण्डितजी! गजब! समझ में आया? शास्त्र के पन्नों में और वाणी में उसकी दृष्टि नहीं है, ऐसा कहते हैं। **परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि...** व्याख्या ऐसी। आहा..हा..! त्रिकाल ज्ञानभाव जो एकरूप त्रिकाल ज्ञानभाव सदृशभाव, में जिसकी दृष्टि है, ऐसे सम्यग्दृष्टि को ये चार सम्यग्ज्ञान प्रगट होते हैं। कहो, समझ में आया? एक है न?

सुमतिज्ञान और सुश्रुतज्ञान, सर्व सम्यग्दृष्टि जीवों को होते हैं। नीचे (फुटनोट) ***सुमतिज्ञान और सुश्रुतज्ञान, सर्व सम्यग्दृष्टि जीवों को होते हैं। सुअवधिज्ञान किन्हीं-किन्हीं सम्यग्दृष्टि जीवों को होता है। मनःपर्ययज्ञान किन्हीं-किन्हीं मुनिवरों को-विशिष्टसंयमधरों को होता है।*** चारित्र अन्तर प्रगट हुआ होता है, उसमें भी विशिष्ट-खास चारित्र के धारक को वह चौथा ज्ञान (होता है) परन्तु वह परमभाव में स्थित है, इसलिए होता है, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? चारित्र हुआ, इसलिए मनःपर्ययज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं है। यहाँ तो ऐसा कहा है। चारित्र से हो तो सबको मनःपर्ययज्ञान होना

चाहिए परन्तु जिन्हें उस परमभाव में स्थित जितने प्रकार से है, उतने प्रकार से उसकी प्रगट पर्याय होती है। बहुत सूक्ष्म! इसकी अपेक्षा दया पालना, व्रत पालना, सीधा-सट्ट (था)। पोपटभाई! वह भटकने का मार्ग। कुछ भान नहीं होता, क्या चीज़ है। वह तो राग है, विकल्प है।

वस्तु की स्थिति, भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा वस्तु कही और उसमें एकरूप सदृश ध्रुव ज्ञानगुण में एकाकार होकर प्रगट हुई पर्याय, ऐसी सम्यग्दृष्टि, वह भी पर्याय है। ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव को, परमभाव में स्थित है, इसलिए उसे ये चार ज्ञान उत्पन्न होते हैं। आहा..हा..! लो, इसमें तो ऐसा कहा। ऐई! बहुत पढ़ते हैं, पठन करते हैं, इसलिए मति-श्रुत होते हैं, ऐसा नहीं कहा।

आत्मा में समुद्र पड़ा है। आत्मा ज्ञान का समुद्र है। अपरिमित-बेहद ज्ञानस्वभाव जिसका स्वभाव... स्वभाव.. स्वभाव.. यहाँ गुण की अपेक्षा की बात की है न? भिन्न पाड़कर। ज्ञान में स्थित है, उसे ये प्रगट होते हैं। इस प्रकार ज्ञायकभाव कहा। वह तो पूरी वस्तु, समस्त गुणों का पूरा पिण्ड, ऐसा जो ज्ञायकभाव त्रिकाल एकरूप भाव है, उसके आश्रय से सम्यग्दृष्टि होता है। यहाँ तो कहते हैं कि परमभाव जो ज्ञानभाव, उसमें जो स्थित है, उसे ये चार ज्ञान उत्पन्न होते हैं। पश्चात् ज्ञायकभाव में स्थित है कहो, ज्ञानगुण में स्थित है कहो (एकार्थवाची है)। यह ज्ञानगुण परमभाव है। कहो, समझ में आया?

मिथ्यादर्शन हो, वहाँ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान 'कुमति ज्ञान', 'कुश्रुतज्ञान' तथा 'विभंगज्ञान'—ऐसे नामान्तरों को (अन्य नामों को) प्राप्त होते हैं। लो, जिसकी श्रद्धा मिथ्यात्व है, जो निमित्त को ही मानता है, राग को ही मानता है और अल्पज्ञ पर्याय को ही मानता है अथवा पुण्य परिणाम, वह धर्म है, ऐसा मानता है, ऐसे मिथ्यादृष्टि को मति-श्रुत और अवधि अर्थात् **'कुमतिज्ञान', 'कुश्रुतज्ञान' तथा 'विभंगज्ञान'...** ऐसे तीन प्रकार होते हैं परन्तु उसे ये चैतन्य को अनुसरकर होते हैं। आहा..हा..! समझ में आया?

यहाँ (ऊपर कहे हुए ज्ञानों में) सहजज्ञान,... लो, अब कहते हैं। अन्तर का स्वाभाविक ज्ञान। आत्मा वस्तु, उसका जो स्वरूप ज्ञान / स्वाभाविक ज्ञान। **सहजज्ञान, शुद्ध अन्तःतत्त्व परमतत्त्व में व्यापक होने से,...** क्या कहते हैं? स्वाभाविक ज्ञान, ध्रुव ज्ञान, वह **शुद्ध अन्तःतत्त्वरूप परमतत्त्व....** आत्मा में वह ज्ञान व्यापक है - पसर गया है।

अभी तो शब्दों के अर्थ समझना कठिन पड़ते हैं। भीखाभाई! स्वाभाविक ज्ञान जो त्रिकाल। आत्मा और अविनाशी तथा उनका ज्ञान ध्रुव, वह अन्त:तत्त्व ऐसा जो आत्मा है, उसमें वह सहजज्ञान व्यापक है, पसरा है, विस्तरित है। आहा..हा..!

शुद्ध अन्त:तत्त्वरूप परमतत्त्व.... देखो! उसमें **व्यापक होने से, स्वरूपप्रत्यक्ष है।** वह ज्ञान त्रिकाल स्वरूपप्रत्यक्ष है। नीचे स्पष्टीकरण किया है। ***स्वरूपप्रत्यक्ष=स्वरूप से प्रत्यक्ष; स्वरूप-अपेक्षा से प्रत्यक्ष; स्वभाव से प्रत्यक्ष।*** स्वभाव से प्रत्यक्ष ज्ञान त्रिकाल है। आहा..हा..! वह केवलज्ञान की अपेक्षा नहीं। त्रिकाल ज्ञान स्वरूपप्रत्यक्ष ही है। प्रत्यक्ष है, ऐसा कहते हैं। वस्तु है, वह प्रत्यक्ष ही है। आहा..हा..! देखो! यह शब्द अन्यत्र कहीं नहीं है। यहाँ ही इन्होंने (कहा है)। समझ में आया? दूसरे शास्त्रों में, दिगम्बरों में भी नहीं तो अन्य में तो है नहीं। देखो! है? स्वाभाविक ज्ञान। जो आत्मा वस्तु है, अनादि-अनन्त अविनाशी, वैसा उसमें ज्ञानस्वभाव, अन्त: तत्त्व जो परमस्वरूप, उसमें वह व्याप्त रहा है। वह गुण (ज्ञान) अन्त:तत्त्व में पसरा हुआ है, विस्तरित है, उसे स्वरूपप्रत्यक्ष कहा जाता है।

मुमुक्षु : वह तो प्रत्येक अवस्था में रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल। अवस्था में नहीं, त्रिकाल गुण में। हालत तो पर्याय है। त्रिकाल ध्रुवरूप रहे, उसे यहाँ प्रत्यक्ष, स्वरूपप्रत्यक्ष ज्ञान कहा है। पण्डितजी! स्वरूपप्रत्यक्ष कभी सुना था? स्वरूपप्रत्यक्ष। यह पद्मप्रभमलधारिदेव, ये तो कहते हैं कि गणधरों ने यह सब टीका की है। हम क्या करें? गणधर आदि से यह टीका चली आ रही है। समझ में आया?

वस्तु ऐसी, वस्तु तो वस्तु प्रत्यक्ष पड़ी है, ऐसा कहते हैं, तो उसका ज्ञान भी यहाँ प्रत्यक्ष ध्रुवरूप से अन्दर पड़ा ही है। समझ में आया? आहा..हा..! वस्तु भगवान आत्मा, ऐसा जो अन्त:तत्त्वरूप परमतत्त्व आत्मा, उसमें जो सहज स्वाभाविक ज्ञान स्वरूपप्रत्यक्षरूप है। ऐसा का ऐसा अनादि-अनन्त पड़ा है। यह ध्रुव की व्याख्या चलती है, हों! स्वरूपप्रत्यक्ष अर्थात् पर्याय नहीं। समझ में आया? ऐसा धर्म भी किस प्रकार का?

मुमुक्षु : वीतराग भगवान का।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग भगवान का। वे तो कहें कन्दमूल नहीं खाना, रात्रि के आहार का त्याग करना, प्रतिक्रमण, मिच्छामि दुक्कडं देना, ऐसी सब बातें इसमें तो कहीं

आयी नहीं। पोपटभाई! वह तो सब विकल्प की राग की बातें हैं। आत्मा तो उनसे पार भिन्न है। उसके ज्ञानस्वभाव की यहाँ तो बात है। आहा..हा..! राग आवे उसे वह जाने, उसकी -अपनी अस्ति का आश्रय लेकर। ऐसे आत्मा की यहाँ बात की है।

वह स्वरूपप्रत्यक्ष भगवान आत्मा... आहा..हा..! अरे! उसका अस्तित्व, उसकी सत्ता की मौजूदगी की अस्ति, वह आत्मा और उसका वह सहजज्ञान, स्वरूपप्रत्यक्ष, त्रिकाल स्वरूपप्रत्यक्ष है। यह आत्मा के गुण की और आत्मा की अस्ति ध्रुवरूप से (रही है)। पर्यायदृष्टि में उसे इस द्रव्यदृष्टि की खबर नहीं पड़ती। यह व्यापक भगवान आत्मा, पूरे तत्त्व के अन्दर ज्ञान ध्रुवरूप से व्यापक है। उस ध्रुव में दृष्टि जाये तो उसे उसकी खबर पड़े। समझ में आया?

केवलज्ञान, सकलप्रत्यक्ष (सम्पूर्ण प्रत्यक्ष) है। प्रत्यक्ष के दो भेद किये। अन्तर ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, ज्ञान ध्रुवरूप रहे, उसे स्वरूपप्रत्यक्ष कहते हैं और उसका आश्रय होकर केवलज्ञान प्रगट हो, वह सकलप्रत्यक्ष है, सम्पूर्ण प्रत्यक्ष है। वह (सहजज्ञान) स्वरूप से प्रत्यक्ष; यह (केवलज्ञान) सकलप्रत्यक्ष है।

मुमुक्षु : विस्तार से जरा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्याख्या तो होती है। यहाँ चार ज्ञान की बात इसमें नहीं लेना।

यहाँ तो पूर्ण प्रत्यक्ष और स्वरूपप्रत्यक्ष - दो भाग। अर्थात् वस्तु भगवान आत्मा अविनाशी प्रभु ऐसा जो अन्तःतत्त्व, ऐसा परमतत्त्व। केवलज्ञान की पर्याय आयी, वह परमतत्त्व नहीं, ऐसा कहते हैं। अन्तःतत्त्वरूप परमतत्त्व भगवान अनन्त गुण का पिण्ड एक अन्तःतत्त्वरूप परमतत्त्व में व्यापक रहा हुआ ज्ञान, उसे सहजज्ञान कहकर स्वरूपप्रत्यक्ष कहा गया है और उस स्वरूपप्रत्यक्ष ज्ञान का आश्रय लेकर... रात्रि को कहा था न? परमभाव में स्थित होकर। वह परमध्रुवभाव, नित्यभाव, परमभाव, अन्तःतत्त्वरूप परमस्वभाव में उसमें रहा हुआ जो ज्ञान, वह स्वरूपप्रत्यक्ष है। स्वरूप से प्रत्यक्ष, स्वभाव से प्रत्यक्ष। वह स्वभाव से प्रत्यक्ष है। वह ज्ञान, पर्याय में नहीं आता, वह ध्रुवरूप रहता है। पण्डितजी!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में स्वरूपप्रत्यक्ष ध्रुव नहीं आता। पर्याय में परिणमन पर्याय का होता है। ध्रुव तो सदृश रहता है।

मुमुक्षु : ध्रुवरूप प्रत्यक्ष....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ध्रुव वह स्वरूपप्रत्यक्ष। वह केवलज्ञान (सकल) प्रत्यक्ष। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ऊपर कहे हुए ज्ञानों में सहजज्ञान शुद्ध अन्तःतत्त्वरूप परमतत्त्व में....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, ऊपर कहे हुए चार नहीं। **(ऊपर कहे हुए ज्ञानों में)** ऐसा कहा है। चार की बात नहीं की है। सब ज्ञान के प्रकार वर्णन किये थे न? चार नहीं, इनके अतिरिक्त ज्ञान भी वर्णन किये थे। वह कारणज्ञान, कार्यज्ञान सब वर्णन किया गया है। कारणज्ञान, कार्यज्ञान चार ज्ञान उन सब ज्ञानों के भेद में, ऐसा कहते हैं। वे अकेले चार नहीं। पहले आ गये हैं न? पहले पैराग्राफ में देखो न! केवलज्ञान असहाय है। कारणज्ञान भी वैसा ही है। कार्यस्वभावज्ञान केवलज्ञान है। निज परमात्मा में रहे हुए सहजदर्शन आदि को जाननेवाला सहजज्ञान त्रिकाल है। वह सब ज्ञान, केवलज्ञान, चार ज्ञान, उन सब ज्ञानों में। **सहजज्ञान,...** जो त्रिकाली स्वाभाविक ज्ञान है, जो पहले कह गये थे। कारणज्ञान भी वैसा है, वह। निजकारणसमयसार का स्वरूप युगपद जानने को समर्थ वैसा ही है, वह। वह सहजज्ञान, त्रिकाली ज्ञान, स्वाभाविक ज्ञान, जिसे कोई कर्म के निमित्त की मौजूदगी और अभाव की अपेक्षा नहीं, ऐसा जो त्रिकाली ज्ञान चैतन्यप्रकाश का सत्त्व, चैतन्यरस, चैतन्यरस, प्रकाश का त्रिकाली भाव चैतन्य का, वह। **सहजज्ञान, शुद्ध अन्तःतत्त्व परमतत्त्व में व्यापक होने से, स्वरूपप्रत्यक्ष है। केवलज्ञान, सकलप्रत्यक्ष (सम्पूर्ण प्रत्यक्ष) है।** उसमें से हुआ केवलज्ञान, उसे सकलप्रत्यक्ष (कहते हैं)। पहला (कारणज्ञान) स्वरूप से प्रत्यक्ष, स्वभाव से प्रत्यक्ष, सहजप्रत्यक्ष; यह (केवलज्ञान) सकलप्रत्यक्ष।

केवलज्ञान की पर्याय प्रगट हुई, वह ध्रुव के आश्रय से प्रगट हुई है। यह तो बात आ गयी है। केवलज्ञान उपयोग चैतन्य अनुविधायीपरिणाम उपयोगः, तो केवलज्ञान भी उपयोग है, वह चैतन्य को अनुसरकर हुआ उपयोग है। समझ में आया? आहा..हा..! इसमें कितना याद रहे? वह तो एक भगवान की भक्ति करना, जाओ गुरु की भक्ति करना, जाओ अब हो गया, कल्याण हो जायेगा। ऐसे नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! यह भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी त्रिकाल है, उसकी भक्ति करने से, भक्ति अर्थात् एकाग्र होने से कल्याण होगा। कहो, समझ में आया?

सकलप्रत्यक्ष (सम्पूर्ण प्रत्यक्ष) है। केवलज्ञान हुआ कैसे ? कि चैतन्य अनुविधायीपरिणाम उपयोग:। समझ में आया ? लो ! सम्यग्दर्शन, श्रद्धागुण त्रिकाल है और सम्यग्दर्शन वर्तमान में है। इसलिए केवलज्ञान उसे अनुसरकर हुआ, ऐसा नहीं है। आहा..हा.. ! कितना विस्तार करते हैं ! समझ में आया ? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में, एक समय में तीन काल-तीन लोक जानने का कार्य हो, उसे केवलज्ञान कहा जाता है। उस कार्यज्ञान को सकलप्रत्यक्ष कहा जाता है। स्वरूप से प्रत्यक्ष तो त्रिकाल है। यह तो पर्याय का प्रत्यक्ष अर्थात् सकलप्रत्यक्ष कहा जाता है। समझ में आया ? कहो, समझ में आया ?

केवलज्ञान या मन:पर्ययज्ञान, वह सब चैतन्य को अनुसरकर होनेवाला ज्ञान है। समझ में आया ? और चारित्र प्रगट हुआ होता है, वह भी अन्दर चारित्रगुण को अनुसरकर ही चारित्र प्रगट होता है और समकित प्रगट होता है, वह भी वास्तव में तो उस श्रद्धागुण को अनुसरकर ही प्रगट होता है और ज्ञान प्रगट होता है वह चैतन्य के गुण को अनुसरकर प्रगट होता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : स्वरूपप्रत्यक्ष अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल। त्रिकाल स्वरूप। स्वरूप का अर्थ उसका स्वरूप-स्वभाव ही यह है। स्वभाव ही है यह। उसका ज्ञान, वह स्वभाव। स्वभाव है, इसलिए प्रत्यक्ष। स्वभाव से प्रत्यक्ष, स्वरूप से प्रत्यक्ष, सहजप्रत्यक्ष, सहजज्ञान। आहा..हा.. ! ऐसा शब्द नहीं आया था। कहीं आया था ? आहा..हा.. ! दिगम्बर सन्तों ने तो केवलज्ञान का हृदय खोल दिया है। आहा..हा.. !

इसे अभी ख्याल में तो ले। ख्याल में लेनेवाली पर्याय है, परन्तु ख्याल करना किसका है ? त्रिकाल का। त्रिकाल ज्ञानभाव स्वरूपप्रत्यक्ष है, उसका आश्रय करे, उसे मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल, अवग्रह, ईहा, अवाय, सब होता है। लब्धि कहो, वह सब उसे अनुसरकर होता है। समझ में आया ? ऐसे बाहर का बहुत जानने में आया, इसलिए बाहर के कारण बहुत जानने के भाव होते हैं, ऐसा नहीं है। यह जानने का सम्यक्भाव अन्तर त्रिकाल सहज स्वरूपप्रत्यक्ष के आश्रय से होता है, उसे चैतन्य अनुविधायी परिणाम कहो। ओहो..हो.. !

दो बातें की हैं। एक कारणस्वरूप प्रत्यक्षज्ञान, एक कार्य-सकलप्रत्यक्षज्ञान।

त्रिकाली कारणज्ञान तो स्वरूपप्रत्यक्ष कहा और केवलज्ञान हुआ, उसे सकलप्रत्यक्ष कहा। स्वरूपप्रत्यक्ष यह नहीं, क्योंकि स्वरूपप्रत्यक्ष तो स्वभाव त्रिकाल है, उसे कहते हैं। यह त्रिकाल नहीं है। यह तो प्रगट हुआ कार्य है। समझ में आया? केवलज्ञान भी सकलप्रत्यक्ष; स्वरूपप्रत्यक्ष पूरा नहीं। ऐसे-ऐसे केवलज्ञान की पर्यायें अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... ज्ञानगुण में पड़ी हैं। उस स्वरूपप्रत्यक्ष ज्ञान के आश्रय से यह केवलज्ञान होता है। आहा..हा..! कितने अपवास करने से केवलज्ञान होता है? टूट मरे तो नहीं होगा? ये बेचारे करते हैं न, वर्षीतप और ये सब। तुम्हारे घर में कभी किया नहीं था न? कहो, समझ में आया? आहा..हा..!

कहते हैं कि अन्दर भगवान आत्मा अर्थात् भग अर्थात् अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द आदि लक्ष्मी का रूप उसका है। वह अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द जो त्रिकाल है, उसमें उस त्रिकाल ज्ञान को स्वरूपप्रत्यक्ष, स्वाभाविकप्रत्यक्ष, सहजप्रत्यक्ष कहा जाता है। समझ में आया? आहा..हा..! ऐसी बात परन्तु...

'रुपिष्ववधेः (अवधिज्ञान का विषय-सम्बन्ध रूपी द्रव्यों में है)'... रूपी द्रव्य को जानता है न? अवधिज्ञान पर्याय अपने को अनुसरकर हुई, परन्तु उसमें जानने की ताकत रूपी की है। अवधिज्ञान। **ऐसा (आगम का) वचन होने से अवधिज्ञान, विकलप्रत्यक्ष है।** एक स्वरूपप्रत्यक्ष; एक सकलप्रत्यक्ष; एक विकलप्रत्यक्ष। विकल इन्द्रिय जो है न! एकदेशप्रत्यक्ष। आहा..हा..! मुनियों ने भी जंगल में रहकर...

उसके अनन्तवें भाग में वस्तु के अंश का ग्राहक (ज्ञाता) होने से... कौन? अवधिज्ञान वह जाने, उससे अनन्तवें भाग भी सूक्ष्म को मनःपर्ययज्ञान जाने। मनःपर्ययज्ञान भी विकलप्रत्यक्ष है परन्तु है विकलप्रत्यक्ष। कहो, समझ में आया? प्रत्यक्ष के इतने भेद किये। एक त्रिकाल स्वरूपप्रत्यक्ष—स्वभावप्रत्यक्ष - एक बोल। केवलज्ञान, वह स्वरूपप्रत्यक्ष - दूसरा बोल। अवधिज्ञान वह विकलप्रत्यक्ष और मनःपर्ययज्ञान विशेष जानने की ताकत अवधि से अनन्तवें भाग में सूक्ष्म को जाने, परन्तु है विकलप्रत्यक्ष; वह सकलप्रत्यक्ष नहीं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक बार फिर से कहो, ऐसा कहते हैं। कहते हैं कि यह आत्मा

है और यह शरीर, वाणी, मन, जड़ ये सब उसके कारण रहे हुए हैं, ये कहीं आत्मा होकर रहे नहीं हैं। यहाँ तो माटी होकर रहे हैं। यहाँ तो आत्मा होकर जो त्रिकाल ज्ञानगुण रहा है, आत्मा का व्यापक होकर रहा है, ऐसा त्रिकाल ज्ञान, उसे स्वाभाविक ज्ञान या स्वरूपप्रत्यक्ष कहा जाता है और उसके आश्रय से केवलज्ञान हुआ, उसे सकलप्रत्यक्ष कहा जाता है। वह पर्याय है। वह (सहजज्ञान) गुण था। यह (केवलज्ञान) पर्याय है। स्वरूपप्रत्यक्ष, वह गुण था। केवलज्ञान, वह सकलप्रत्यक्ष पर्याय है। अवधि भी विकलप्रत्यक्ष है, क्योंकि थोड़ा ही देखता है और मन:पर्ययज्ञान भी अवधि से सूक्ष्म है, तथापि वह विकलप्रत्यक्ष है, सकलप्रत्यक्ष नहीं। कहो, समझ में आया?

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, दोनों परमार्थ से परोक्ष हैं... लो, मतिज्ञान और श्रुतज्ञान दोनों परमार्थ से परोक्ष हैं। यह बात अन्तर की अपेक्षा से यहाँ ली नहीं है, वरना मति-श्रुतज्ञान स्व की अपेक्षा से तो प्रत्यक्ष है परन्तु स्थूलपना ऐसा आता है, उमास्वामी का... **और व्यवहार से प्रत्यक्ष हैं।** मति-श्रुत व्यवहार से प्रत्यक्ष है। यह मैंने प्रत्यक्ष जाना, ऐसा कहते हैं न? देखो! यह मैंने जाना, इस अपेक्षा से व्यवहार प्रत्यक्ष है। कहो, इतने भेद कहे, वे ५६३ भेद जीव के, वे नहीं रटते? जीव के, जड़ परमाणु के और सब। यह तेरे ज्ञानगुण का, त्रिकाल और उसकी पर्याय और भेद को तो जान। समझ में आया? कि जो तेरी अस्ति में हैं, तेरी सत्ता में हैं। सहजज्ञान त्रिकाल सत्ता में है। सकलप्रत्यक्ष, विकलप्रत्यक्ष तेरी पर्याय की सत्ता में होता है। समझ में आया?

और विशेष बात यह है कि उक्त (ऊपर कहे हुए) ज्ञानों में साक्षात् मोक्ष का मूल,... लो, इन सब ज्ञानों के प्रकार कहे, उनमें **साक्षात् मोक्ष का मूल, निजपरमतत्त्व में स्थित ऐसा एक सहजज्ञान ही है...** सहजज्ञान ही है। समझ में आया? आत्मा की मुक्तदशा, सिद्धदशा होने में आत्मा का त्रिकाली सहजज्ञान मोक्ष का मूल, निजपरमतत्त्व में स्थित, निजपरमतत्त्व ऐसा जो आत्मा, उसमें रहा हुआ स्वाभाविक ज्ञान ही, जो स्वरूपप्रत्यक्ष ज्ञान है, वह ही मोक्ष का कारण है। लो, ठीक! ज्ञान की बात लेनी है न?

पूरी मोक्ष की दशा का कारण द्रव्य है परन्तु केवलज्ञानरूपी मोक्ष का कारण यह सहजज्ञान त्रिकाल है। आहा..हा..! समझ में आया? क्या कहा? मोक्ष जो पूर्ण मोक्षदशा है, उसका कारण तो पूरा द्रव्य है, परन्तु केवलज्ञानरूपी मुक्तदशा का कारण तो अन्दर सहजस्वरूप ज्ञान है, समझ में आया?

व्यवहार, दया, दान, भक्ति और पूजा, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। अरे! निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय भी मोक्ष का कारण नहीं है, ऐसा यहाँ तो सिद्ध करना है। आहा..हा..! समझ में आया? वे चार ज्ञान कहे थे न? अन्तर्भेद। विकलप्रत्यक्ष, सकलप्रत्यक्ष और मति, श्रुत और अवधि, वे सब भेद केवलज्ञान का कारण नहीं है। आहा..हा..! अन्तर में भगवान आत्मा में व्यापक, कायम रहा हुआ, पसरा हुआ, ऐसा प्रत्यक्ष सहजज्ञान, वह मोक्ष का मूलकारण है। वह मोक्ष का कारण है। आहा..हा..!

तथा सहजज्ञान, (उसके) पारिणामिकभावरूप स्वभाव के कारण,... अब कहते हैं कि परन्तु वह चीज क्या है? तथा सहज स्वाभाविकज्ञान, स्वरूपप्रत्यक्ष ज्ञान जो कहा था वह। पारिणामिकस्वभाव के कारण। वह तो अपना पारिणामिक सहजस्वरूप का स्वरूप ही वह है। वह **भव्य का परमस्वभाव होने से,...** भव्य जीव का वह परमस्वभाव है। आहा..हा..! स्वाभाविकज्ञान स्वरूपप्रत्यक्ष कहा। समझ में आया? कारणप्रत्यक्ष, स्वभाव से प्रत्यक्ष कहा, उसे यहाँ परमस्वभाव, **भव्य का परमस्वभाव होने से,...** आहा..हा..! मोक्ष की पर्याय प्रगट होनी है, ऐसे भव्य जीवों का यह परमस्वभाव ही कारण है। परमस्वभाव ही उसका स्वभाव है। आहा..हा..! ऐसी धर्म की व्याख्या कैसी! सब अनजानी आवे, लो! उसमें छह काय की दया पालना,... मिच्छामी दुक्कडं तस्सुतरि करणेण... भगवान की स्तुति, सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु... ऐसा तो कुछ इसमें आया नहीं। वह तो सब विकल्प की बातें हैं। वस्तु वह है नहीं। आहा..हा..! फिर कठिन पड़े। साधु (होवे तो ऐसा कहे), नहीं, नहीं। यह तो अकेला निश्चय.. निश्चय.. निश्चय.. निश्चय.. (करते हैं) परन्तु निश्चय अर्थात् अकेला सत्य.. सत्य.. सत्य..। निश्चय.. निश्चय.. करके (निकाल डालना है)। परन्तु निश्चय अर्थात् सत्य.. सत्य.. सत्य.. ऐसा। व्यवहार अर्थात् (खोटा.. खोटा.. खोटा..)।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य बात है।

मुमुक्षु : वह परमभाव में स्थित न रहे तो शुभभाव करना न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा वे लोग कहते हैं। यह तो वह साधु आया था, वह कहता था। कुन्दकुन्द विजय नहीं आया? कुन्दकुन्द विजय, रामविजय का शिष्य। वह यहाँ रहा

था। फिर कहा, बात तो सत्य लगती है परन्तु इस भव में नहीं। कुन्दकुन्द विजय था। अभी है। उस सुलोचन विजय के साथ में। सुलोचन विजय गुजर गये। रामविजय के पास कलकत्ता में दीक्षा ली थी न? वह तो फिर छोड़ दिया। ऐसा सुना, इसलिए उसे ऐसा लगा कि मार्ग कोई दूसरा है। परन्तु वह अगरपंथ... पन्थ में रह गया। ऐई! शान्तिभाई! इन कान्तिभाई के बड़े भाई। दीक्षा ली थी। इनके बड़े भाई शान्तिभाई वे यहाँ रहे और बीच में थे सुलोचनजी। यहाँ आये थे परन्तु सब गड़बड़ हो गयी। न जँचा यह, न वह जँचा। आहा..हा..! वे कहते हैं, वे कुन्दकुन्द विजय, बात तो सत्य लगती है। सुलोचन विजय को तो सुनकर ऐसा हुआ, मार्ग यह है। अब हम यह दूसरी प्ररूपणा नहीं करेंगे, यह करेंगे, ऐसा करके उसने छोड़ दिया। कुन्दकुन्द विजय बोले, मार्ग तो यह लगता है परन्तु इस भव में हो सके, ऐसा नहीं लगता। यह करते हैं, वह तो अनन्त भव में सब किया है। आहा..हा..! और कल कोई कहता नहीं था? कि इसमें समकित नहीं होता। भाई कहते थे न? ऐसे कितनेक बोलते हैं। इस भव में समकित नहीं होता। तब तुम साधु होकर कैसे बैठे? मिथ्यादृष्टि होकर तुम साधु हुए? कुछ भान नहीं होता? गप्पें मारते हैं। आहा..हा..!

यह तो **भव्य का परमस्वभाव होने से, सहजज्ञान के अतिरिक्त अन्य कुछ उपादेय नहीं है।** देखो, कहो, समझ में आया? भव्य का परमस्वभाव चैतन्य... अभव्य का भी वह स्वभाव है परन्तु उसे प्रगट नहीं होता, इसलिए नहीं कहा जा। प्रगट होता है, उसे परमस्वभाव है। भान में आवे, उसे परमस्वभाव, अन्य को नहीं। है तो सही परन्तु भान में नहीं आता तो उसका नहीं कहा, जाओ। भान में न आवे, उसे क्या परमस्वभाव? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

आहा..हा..! दरबार का दरवाजा खोल दिया है। खजाना खोल दिया है। वीतराग परमेश्वर तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ इन्द्रों और गणधरों के समक्ष यह बात कहते थे। सभा में यह बात थी। वह कुछ गुप्त नहीं रखी। इसकी पहले श्रद्धा में निर्णय तो करे। समझ में आया? मार्ग यह है, दूसरा कोई मार्ग है नहीं। आहा..हा..!

सहजज्ञान, देखो! जिसे स्वरूपप्रत्यक्ष कहा था, जिसे भव्य का परमस्वभाव कहा था। समझ में आया? कि जिसे यह ज्ञान अन्तर के अनन्त आनन्दादि को जाननेवाला कहा था। अनन्त शक्तियाँ हैं न? ज्ञान, दर्शन, आनन्द सबको जाननेवाला यह त्रिकाली ज्ञान है। ऊपर कहा था। ऐसा जो भगवान परमस्वभावज्ञान, उसके अतिरिक्त दूसरा कुछ उपादेय

नहीं है। इसके अतिरिक्त कोई आदरणीय धर्मी को नहीं है। आहा..हा..! कहो, समझ में आया?

सहजज्ञान के अतिरिक्त अन्य कुछ उपादेय नहीं है। त्रिकाली भगवान आत्मा में भरपूर ज्ञान ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... स्वरूपप्रत्यक्ष, स्वभावप्रत्यक्ष, सहजप्रत्यक्ष, सहजस्वभाव, परमभाव, कारणज्ञान के अतिरिक्त भव्य जीव को दूसरा कोई उपादेय / आदरणीय नहीं है। किस पर्याय को आदरणीय रखा इसमें? आहा..हा..! समझ में आया? देव-शास्त्र-गुरु तो उपादेय हैं या नहीं?

मुमुक्षु : प्रभु! यह बात तो अभी डिपॉजिट रखना।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी नहीं कहना, कहते हैं। परन्तु कहते हैं कि प्राप्त कहाँ से हो?

मुमुक्षु : समझानेवाला कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझा स्वयं अपने से है, पर से नहीं। यह सब बात सत्य है परन्तु रखो। अभी गिरवी रखो। आहा..हा..! स्वाभाविक ज्ञान के अतिरिक्त... आहा..हा..! ढ़िंढ़ोरा पीटकर कहा है। कुछ गुप्त रखा है? धर्मी सम्यग्दृष्टि होने को, होनेवाले को, और हुए को सबको एक ही यह स्वाभाविक त्रिकाली ज्ञान ही एक आदरणीय है। आहा..हा..! कहो, जेठाभाई! पुस्तक है या नहीं? नानाभाई को दिया होगा न? उसमें देखो! कैसी बात है! भगवान का ऐसा मार्ग है। आहा..हा..!

भव्य का परमस्वभाव होने से,... वह पारिणामिकभावरूप स्वभाव के कारण। ऐसा। सहजभाव पारिणामिक अर्थात् सहज-सहजस्वरूप सहजस्वरूप। उस ज्ञान का रस का सत्व / तत्त्व त्रिकाली ध्रुवरस। आहा..हा..! वह **भव्य का परमस्वभाव होने से, सहजज्ञान के अतिरिक्त अन्य...** अस्ति-नास्ति की है। पहले ऐसा कहा था न कि मोक्ष का मूल उस तत्त्व में रहा हुआ ज्ञान है, यह अस्ति की थी। अब यहाँ कहते हैं, उसके अतिरिक्त दूसरा नहीं है, यह नास्ति की-यह अनेकान्त है। समझ में आया? अनेकान्त ऐसा नहीं कि यह भी आदरणीय और वह भी आदरणीय है। आहा..हा..!

भगवान, रागरहित निष्क्रिय चीज़ और अकेला ज्ञानभाव... भाव... भाव.. यहाँ ज्ञान की व्याख्या चलती है न! उपयोग की चलती है। ऐसा जो सहजस्वभाव, नित्यभाव, सहजभाव, परमभाव, पारिणामिकभाव, पारिणामिकभावस्वरूप रहा हुआ ज्ञान, अन्तःतत्त्व

भगवान में व्यापक ज्ञान, ध्रुवरूप से रहा हुआ ज्ञान, सहजानन्द प्रभु आत्मा का जो ज्ञान, वही उपादेय है; उसके अतिरिक्त कुछ उपादेय नहीं है। उसके अतिरिक्त 'दूसरा कोई' शब्द है या नहीं ?

मुमुक्षु : .....समझने में दिक्कत क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझाने में दिक्कत नहीं।

कुछ उपादेय नहीं है। आहा..हा..! ज्ञान की पर्याय आवे कहाँ से ? बाहर में से आवे ? बाहर में से लाभ माने तो उसे भ्रमणा है। सत्पुरुष मिले तो प्राप्त हो, ऐसा कहा है न उसमें ? भाई सोगानी ने। सोगानी को किसी ने पूछा था कि भाई! सत् मिले तो (प्राप्त हो)। वह सत् है तो तू सत् नहीं ? तू सत् है या नहीं ? या तू असत् है ? है या नहीं अस्तिरूप वस्तु पूरी ? सत् से ज्ञानी मिले और सत् समागम होवे तो उससे हो। उस सत् से हो तो तू सत् है या नहीं ? या तू असत् है ? नहीं ? ऐसा है। फिर विशेष बात लेंगे....

(*श्रोता :* प्रमाण वचन गुरुदेव!)